ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-9* December-2020
Anthology : The Research

हिन्दी कथा साहित्य में अभिव्यक्त पितृसत्ता और स्त्री जीवन का यथार्थ

Patriarchate Expressed in Hindi Fiction and Reality of Female Life

Paper Submission: 00/00/2020, Date of Acceptance: 00/00/2020, Date of Publication: 00/00/2020

गरिमा कंचन
शोधार्थी
हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय का
लखनऊ, यू.पी., भारत

सारांश

इस लेख के माध्यम से हिन्दी लेखिकाओं द्वारा हिन्दी कथा साहित्य में अभिव्यक्त पित्रसत्तात्मक समाज को प्रस्तुत किया गया कि किस प्रकार स्त्री का जीवन उसका 'अपना जीवन 'अपना नही बल्कि पुरूष सत्ता की जकडन में जकडा है। तमाम हिन्दी लेखिकाए यथामन्नू भण्डारी , प्रभा खेतान, मैत्रयी पुष्पा आदि ने इसे न केवल स्वयम जीवन में इसे महसूस किया बल्कि इसे कथा सहित्य से व्यक्त रूप में प्रस्तुत किया है।

Through this article, Hindi writers have been presented to the patriarchal society expressed in Hindi fiction that how a woman's life is not her own life, but the man is in the grip of power. All Hindi writers, Yathamannu Bhandari, Prabha Khaitan, Maitreyi Pushpa etc. not only felt it in their own life but also presented it in narrative form.

मुख्य शब्द : पित्रसत्तात्मक समाज, अस्तित्ववादी आन्दोलन।
Patriarchal Society, Existential Movement.

प्रस्तावना

मध्यकालीन परम्पराओं की टूटन और आधुनिक पुनर्जागरण के साथ ही स्त्री की उपस्थिति जीवन के हर क्षेत्र में उभरी। यह उपस्थिति अस्तित्व की खोज के साथ ही अस्तित्ववादी आन्दोलन के रूप में सामने आयी, हिन्दी साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। स्वानुभूति से प्रारम्भ हुयी यह धारा साहित्य में कविता, उपन्यास, कहानी में सशक्त उपस्थिति के साथ बढ़ी। महिला रचनाकारों ने अपना 'प्राप्य' प्राप्त करने के लिये संघर्ष हेतु अपना कदम आगे बढ़ाया। बीसवीं सदी का अन्तिम चरण विशेष रूप से महिला लेखन के विकास और संभावना के विस्तार के लिये याद किया जायेगा। स्त्री मानसिक रूप से तैयार होकर संघर्ष हेतु आगे खड़ी हुयी। अभी तक लेखकों ने स्त्रियों की भावनाओं, संवेदनाओं, त्रासदियों का अनुभव सिर्फ देखकर किया है। जब लेखिकाओं ने स्वंय पर खुल कर लिखना शुरू कर दिया तो तमाम वातायन खुले, ऐसा सच भी उजागर हुआ जहाँ लेखकों का पहुंचना कठिन था। यह वैचारिक नवीनता हमारे यहाँ स्त्री विमर्श के नाम से प्रचलित हुयी।

स्त्री विमर्श का पहला व आखिरी सरोकार स्त्री की मुक्ति, स्वप्न, संकल्प और संघर्ष है। यह मुक्ति, कैसी मुक्ति है? बंधकों के सापेक्षता में मुक्ति परिभाषित होती है। नारी जिन बंधनों में बंधी है, उनसे तय होता है कि उसकी मुक्ति कैसी होगी–दैहिक संदर्भ में, मानसिक संदर्भ में, आर्थिक संदर्भ में। नारीवादी आन्दोलनों का इस दिशा में सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने व्यापक स्तर पर स्त्री को स्वचेतन बनाया है। उसमें इस बात को पैदा किया है कि वह उपभोग की वस्तु न बनकर सजीव इकाई बने और अपनी इस नयी भूमिका की स्वीकृति की माँग करे। मुख्य बात यह है कि अपने बारे में निर्णय लेने का अधिकार, चयन की स्वतंत्रता, स्वंय स्त्री के हाथ में होनी चाहिये।

साहित्य की किसी भी विधा में लेखक जब रचना करता है तो क्या वह अपने अन्दर को मूर्त्त नहीं करता? क्या कोई भी लेखक, चाहे वह स्त्री हो या पुरूष, अपनी रचना प्रक्रिया में स्वानुभूति से मुक्त रह सकता है? क्या आत्मकथा में आप बीती का अनुसृजन नहीं करना होगा? भारतीय पुरूष वर्चस्व समाज में, आर्दशवादी नैतिकता से ओत–प्रोत परम्पराओं में, जहाँ स्त्री की देह की पवित्रता का मानदण्ड है वहाँ क्या लेखिकाओं को यौन सम्बन्धों के खुलासे की स्वतंत्रता

है? और यदि समाज उसे यह स्वतंत्रता दे भी दे तो क्या उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जायेगा? पाठक में क्या इतनी सामर्थ्य है कि क्या वह उन्हें उसी रूप में देखेगा जैसा कि लेखिकायें उसे बताना चाहती हैं ? या फिर स्त्री लेखन की सामर्थ्य और प्रौढ़ता को वह सहज स्वीकार करेगा ?।

ज्ञान–विज्ञान, आधुनिक मनोविज्ञान व जीव वैज्ञानिक अनुसंधानों ने तथ्यों का उद्घाटन किया जिससे आधुनिक नारी जान गयी कि नारीत्व पितृ सत्ता द्वारा अपने फायदे के लिये एक ऐसा मिथक है जिसका कोई वैज्ञानिक व तार्किक आधार नहीं है। ''स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है,''1 जैसे वक्तव्य देकर सीमोन द बोउवार और 'बधिया स्त्री' का लेखक जर्मन ग्रियर बहुत पहले ही इस सत्य को उजागर कर चुके हैं। दरअसल पितृसत्ता द्वारा स्त्री को दोयम दर्जे पर बनाये रखने के लिये एक पूरी की पूरी विचाराधारा को निर्मित किया गया, जिसे विभिन्न संस्थाओं, रीति रिवाजों के माध्यम से वैधता प्रदान की गयी। धीरे–धीरे पितृ सत्ता द्वारा प्रायोजित इन बातों को स्त्री ने अपनी नियति मानकर संस्कारों के रूप में आत्मसात कर लिया।

अध्ययन के उद्देश्य

इस लेख के माध्यम से हिन्दी कथा साहित्य के अभिव्यक्त स्त्री जीवन और उसके यर्थाथ को प्रस्तुत किया गया है कि स्त्री का जीवन दोयम दर्जे की पीड़ा को सहता और भोगता है। स्त्री होना उसके लिये अभिशाप बन जाता है। इस शोषण के खिलाफ खड़ा 'महिला लेखन' महिलाओं की आवाज को सामने रखता ही नही, प्रेरणं भी देता है।

नारीत्व का यह मिथक स्त्री के प्रति अन्याय और उत्पीड़न का प्रमुख स्रोत है। ''स्त्री के विद्रोह का एक प्रमुख कार्यक्रम इसी महान गढ़न्त को चकनाचूर करने का संकल्प है। पश्चिम का स्त्री विमर्श, खासतौर से बीती सदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना, दुनिया की आधी आबादी के हक में होने वाला परिवर्तन है। अपनी विशिष्ट संरचना के कारण मध्यवर्ग इससे सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। सदी के अन्त तक समाज में स्त्री के कई स्तरों में भाग्यवती की सवा सौ साल पहले वाली बहुएं हैं, तो दूसरी ओर आ खड़ी वह स्त्री है जिसकी स्वाधीनता के प्रमाण आस–पास चारों ओर बिखरे ही बिखरे पड़े हैं– आर्थिक आत्मनिर्भरता, व्यवसायिक उपलब्धियाँ, सूचना संचार माध्यमों पर स्त्री का अधिपत्य, सौन्दर्य उद्योग का चमकीला संसार और स्वेच्छा से सम्बन्धों का चुनाव। लेकिन इस पैमाने का अन्तिम छोर है विशिष्ट वर्ग की विशिष्ट स्त्री के लिये सुरक्षित।''2

पुरूषों को महिलाओं से यातना नहीं सहनी पड़ती क्योंकि उनका दर्जा समाज में प्रथम श्रेणी का है। अतः उनकी आत्मकथायें समाज, विश्व, स्वंय के संघर्ष, उपलब्धि, असफलता, वैश्विक व आस पास की समस्यायें आदि को चित्रण ज्यादा मुखरता से करती है, जिसमें वाह्य चित्रण तादात में ज्यादा होता है जबकि महिलाओं की अपने घर में, अपने मन में, अपनी वेदना में, अपने अनुभव में एक दुनिया होती है। यह छोटी सी दुनिया इतनी बड़ी होती है कि यह मनुष्य भर की आधी आबादी की अनुभूति की सफलतम अभिव्यक्ति होती है, जिसमें सकारात्मक कम, नकारात्मक तत्व ज्यादा होते हैं। दिनेश नंदनी डालमिया ने लिखा है ''अपने नकारात्मक अनुभवों को अभिव्यक्त करते हुये मैं अपने से जुड़े अन्य व्यक्तियों के निजी जीवन की गोपनीयता का अतिक्रमण कर रही थी, जिसका मुझे अधिकार नहीं था। इसी अनाधिकार चेष्टा के अहसास के फलस्वरूप इस आत्मकथा को मैंने उपन्यास के रूप में प्रकाशित करवाया।''3

आधुनिक समय में स्त्री ने साहित्य को व्यापक धरातल प्रदान किया। स्वानुभूति से उपजी पीड़ा, दर्द, वेदना, एहसास और दोयम दर्जे के अनुभव उसके साहित्य में विभिन्न रूपों में सामने आये। साहित्य में की भूमिका के विषय में मार्ग्रीत ट्यूराश ने ठीक ही कहा है कि ''साहित्य औरतों का ही है चाहे वह उनकी बात करें या उनके द्वारा रचा जाए, औरत ही साहित्य है।'' वास्तव में साहित्य का प्रत्येक क्षेत्र स्त्री का अपने अनुभवों से उपजा दर्द है जिसे कहीं सहानुभूति माना गया। कहीं 'स्वानुभूति'। स्त्री होना ही उसके लिए एक ऐसी अनुभूति है जिस पर साहित्य के तमाम पृष्ठ रंगीन हो जाते हैं। इसे ही 'नारी–चेतना', 'स्वानुभूति चेतना'आदि तमाम शब्दों से परिभाषित किया जा सकता है।

मीराबाई ने ऐसा धरातल तैयार किया, जिसमें जीवन तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में नवान्कुर उत्पन्न हुए। ये नवान्कुर विद्रोह की भूमि में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने साहित्यिक कर्म तथा अपने जीवन दोनों में वर्चस्व की लड़ाई लड़ी और इस लड़ाई में उन्होंने पुरुष–वर्चस्व को तोड़ा। इस वर्चस्व को तोड़ने की लड़ाई न मीरा के लिए आसान थी, न महादेवी के लिए। परम्परा के इस बीज–बिन्दु में उन्होंने महिला होने की पीड़ा को देखा, समझा, महसूस किया और सबसे ज्यादा अभिव्यक्त किया। मीराबाई का योगदान इसीलिए सर्वप्रथम और सर्वमहत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने सिर्फ लिखा ही नहीं, बल्कि लड़ा भी। स्त्री–लेखन की जो परम्परा उन्होंने शुरू की, वह समय के साथ आगे बढ़ती गयी।

व्यक्ति अपने आप का जितना निर्माण करता है, उससे ज्यादा समाज उसके व्यक्तित्व को आकार देता है। कलाकार हो या साहित्यकार, जन्म से सीखकर नहीं आते कि उन्हें आगे मिथ तोड़ने हैं, नये मूल्य बनाने हैं, विद्रोह करना है, परम्परा को तोड़ना, नयी विचारधारा रखनी है। ये सब समाज और व्यक्ति के आपसी घर्षण से उत्पन्न होते हैं। ये घर्षण जितना तेज होगा, कलाओं में अभिव्यक्ति भी उतनी ही तीव्र होगी। कलाकर वही समाज को देता है, जो समाज उसे देता है। बहुत–सी महिलाओं ने जीवन में वर्जनाओं को तोड़ा। कई महिलाओं ने लेखन में वर्जनाओं को तोड़ा। वर्जनाओं को जीवन में तोड़ने और साहित्य में तोड़ने की बात भिन्न–भिन्न होते हुए भी समान है क्योंकि साहस की जरूरत यहाँ भी है, और वहाँ भी। विरोध यहाँ भी होता है और साहित्य में भी। आक्षेप दोनों ही जगह उसे सहने पड़ते हैं। दोनों ही जगह हिम्मत, साहस और वैचारिकी एक सशक्त रूप में सामने आते हैं।

लेखन अपने आप में एक मूक विद्रोह है जो काम भाषा नहीं कर पाती, उससे बड़ा काम ये 'मूकशब्द'

ध्वनित कर देते हैं। तभी तो इतिहास में हर विद्रोह और क्रांति की पृष्ठभूमि साहित्य के फलक से बनती हैं। ये सब बातें इसीलिए जरूरी है कि कैसे एक साहित्यकार का जन्म होता है। कैसे परिस्थितियाँ और स्थितियाँ लेखन में चिंगारी भर देती हैं। मीरा हों या प्रभा खेतान, मन्नू भण्डारी हों या मैत्रेयी पुष्पा, सभी का लेखन इस चिंगारी को उत्पन्न करने में सामर्थ्यवान रहा है। ''महिला कथाकारों ने नारी की स्वायत्ता को अनेक रूपों में चित्रित किया है। वह अपने जीवन में अपने संगी–साथियों के चयन में स्वतंत्र विचार रखना चाहती हैं। अब नारी के अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए समाज में आमूल परिवर्तन जरूरी है।'' 4 हम साहित्य और इतिहास को साथ–साथ इसीलिए नहीं पढ़ते हैं कि तथ्यों का संग्रहण या प्रस्तुतीकरण करें, बल्कि इतिहास में जो मर्म है, वही साहित्य की नब्ज़ है। साहित्य इतिहास के पृष्ठों से भी निर्मित होता है। इतिहास में जो कुछ बचा रह जाता है, जो कुछ शेष रहता है, जिसमें बदलाव की जरूरत हो, उसी शून्यता और खालीपन को पूरा करने का काम साहित्य करता है। इसीलिए हर युग का, हर समय, और हर काल का साहित्य नयापन लिए होता है। समाज की कमी को दूर करने तथा नयापन लाने का काम साहित्य करता है।

हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं ने कुछ ऐसा ही नयापन लाने का प्रयास किया है। ''महिला कथाकारों की एक लम्बी परम्परा है, जिन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसे स्त्री–पात्रों को प्रमुखता दी है, जो अपनी स्वतंत्र सोच रखती हैं, जो अपनी आँखों से जिंदगी के अँधेरे–उजले पक्षों और विस्मृत कोने को देखती हैं एवं मानवीय रिश्तों के तमाम उलझे पृष्ठों को खोलने का प्रयत्न करती हैं, अपने स्त्री वर्ग पर थोपे गए व सदियों से चले आते विभिन्न प्रकार के मिथकों एवं भौतिक धार्मिक मान्यताओं की असामयिकता, व्यर्थता तथा जड़ता का खुलासा करती है।''5 इन लेखिकाओं ने नारी–जीवन में जो शेष रह गया था, और जिनसे साहित्य में खालीपन था, उसे भरने का प्रयास किया है। ये 'शेष' ही नारी–लेखन में बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन था। इस 'शेष' ने ही उनके जीवन को एक लक्ष्य ही नहीं, बल्कि दिशा भी प्रदान की, जिससे वे अपनी वैचारिकी को बना सके।इस दिशा में महिला रचनाकारों ने स्त्री–जीवन के तमाम गोपनीय–अगोपनीय पक्षों को सामने रखा। वे पक्ष जो आजतक समाज के दबाव में दबे पड़े थे, इन रचनाकारों की कलम से जीवंत हो उठे। मध्यकाल में मीरा से शुरू हुई यह परम्परा 20वीं सदी तक आते–आते सशक्त ही नहीं, बल्कि गहन और विस्तृत भी हुई।

''20वीं सदी के अंतिम दशक की महिला रचनाकारों की यह उपलब्धि कही जाएगी कि उन्होंने स्त्री के देह के साथ जुड़े तमाम सामाजिक एवं आर्थिक संदर्भों को खोजने में उल्लेखनीय सफलता अर्जित की है। पिछले कुछ अरसे से एक सकारात्मक संकेत मिलता है कि महिला उपन्यासकारों में स्त्री होने का बोध काफी कम हुआ है। बीसवीं शताब्दी का आखिरी दशक तो महिला रचनाधर्मिता के विस्फोट के रूप में ही जाना जाएगा, खासकर स्त्री कथाकारों ने इतने शक्तिशाली उपन्यास उस दौर में लिखे हैं कि इनमें से बहुतों को कालजयी कहा जाए तो असंगत न होगा। इस दौर में स्त्री की संवेदना किसी एक खास बिंदु या दायरे पर ठहरी हुई नहीं है, और एक वाक्य में कहें तो वह 'स्त्री मुक्ति के नये औजार' खोजने में जुटी नजर आती है ।'' 6 20वीं सदी में तो इन लेखिकाओं की एक पूरी परम्परा है जिसमें इन्होंने भोगे हुये यथार्थ का वर्णन ही नहीं किया, बल्कि स्त्री–जीवन को एक दिशा भी प्रदान की। स्वतंत्रता के पहले की जकड़न ने इन्हें स्वतंत्रता के पश्चात् भी जकड़े रखा। महादेवी की पीड़ा यहाँ कम नहीं हुई, बल्कि समानता और स्वतंत्रता की भावना ने इनको ज्यादा प्रभावित किया। इन महिला रचनाकारों पर ठीक ही लिखा गया–''स्वतंत्रता पश्चात् के नारी–लेखन में स्त्री बोध की जागृति बढ़ने से महिला रचनाकारों के स्वर बदले। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, मन्नू भण्डारी आदि की रचनाओं में अस्मिता बोध और नारी मुक्ति की धार को पैना किया गया।.....कृष्णा अग्निहोत्री आदि लेखिकाओं ने नारी के आत्म विद्रोही तेवर के तीखेपन को उभारा किंतु कुसुम अंसल, मैत्रेयी पुष्पा आदि कथाकारों ने समकालीन नारी के आत्मसंघर्ष और उसकी टूटती हुई तिलिस्मी दुनिया से समाज को रूबरू कराया।''7

कुसुम अंसल, प्रतिभा अग्रवाल, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, कृष्णा अग्निहोत्री, मन्नू भण्डारी, प्रभाखेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि तमाम सिद्धहस्त लेखिकाओं ने अपने कथा –साहित्य में स्त्री चेतना को तमाम रूपों में अभिव्यक्त किया। कुसुम अंसल की साधवी, मुक्ता, सुरेखा; चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की खुदेजा; कृष्णा अग्निहोत्री की कनु; मन्नू भण्डारी की रंजना, शकुन; प्रभा खेतान की प्रिया, सोमा; मैत्रेयी पुष्पा की मोहिनी, मंदा, सारंग आदिसभी की पीड़ा और दर्द की अभिव्यक्ति भले ही अलग–अलग हो, किंतु उनका जीवन–दंश समान है।इन लेखिकाओं ने पुरुष सत्ता की तमाम बंदिशों से अलग अपनी जीवन गाथा को अपनी वाणी दी। इनके योगदान पर सही लिखा गया है–''इन लेखिकाओं ने पुरुष लेखकों से इतर अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ नारी मन की टोह ली है। अपनी पीड़ा को, अनुभूतियों को, संघर्ष को लेखिकाएँ अत्यन्त तल्खी के साथ भी प्रस्तुत कर रही हैं। नौकरी पेशा नारी की बदलती हुई परिस्थितियों, उससे उपजती नयी समस्याओं, पारिवारिक एवं दाम्पत्य जीवन के बनते–बिगड़ते समीकरणों को कहानियों में अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ महिला लेखिकाओं ने प्रस्तुत किया है।''8

नारी–जीवन से जुड़े सभी पक्षों यथा पारिवारिक, दाम्पत्य, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक आदि सभी का इन लेखिकाओं ने वर्णन किया। वर्णन के साथ–साथ इन परम्पराओं को नारी जीवन के दंशकेसाथ जोड़कर तर्कसंगत विश्लेषण भी किया। उनकी रचनाएँ यथार्थ वर्णन, बदलाव, परिवर्तन सभी को एक साथ लेकर चलती हैं। इन लेखिकाओं ने किस प्रकार स्त्री–चेतना की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की, इसे आगे विस्तृत रूप से तमाम आधारों पर देखना होगा।समाज ने नारी को वह नहीं दिया, जिस आत्मसम्मान की वह पात्र थी। हर जगह यथा घर, परिवार, दफ्तर में उसे तमाम तरह के अपमान को सहना पड़ा। इस परिस्थिति में उसके जीवन की धारा

इस प्रकार हो गयी कि वह उसमें घुटन महसूस करने लगी। नारी–जीवन की इस घुटन को महिला–लेखिकाओं ने तमाम रूपों में अपने रचना –संसार में स्थान दिया।''हमारा समाज आज भी पुरुष प्रधान है। समाज का रेशा–रेशा पुरुषों द्वारा पुरुषों के लिए निर्मित है। वह नारी के लिए सारे नियम बनाता रहा है और ये सारे नियम स्त्री के लिए अनुकूल नहीं हैं।.....कुछ कर दिखाने की अकुलाहट उसके अंदर विद्यमान है।''9 समाज द्वारा दी गयी यातना ने उसके वजूद को जगाया और अस्मिता बोध की ओर बढ़ाया। किंतु तमाम वर्जनाओं के कारण वह अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में आ गयी और यहीं से उसमें घुटनशीलता, अकेलापन आदि को जन्म दिया है।

'उदास आँखें' की सूपर्णा तथा 'नींव का पत्थर' की शिखा नारी जीवन की तमाम विसंगतियों को उजागर करती है, जिसमें उनका जीवन घुटन का अनुभव ही नहीं करता, बल्कि वे अपने को बेबस भी महसूस करती है। शिखा के जीवन के माध्यम से लेखिका ग्रामीण जीवन की उस मानसिकता को भी चिह्नित करती चलती है, जो परम्पराओं, रीति–रिवाजों व सांस्कृतिक जटिलता के रूप में नारी–जीवन पर बोझ बन जाती है। 'उसकी पंचवटी' की साधवी पति के प्रेम से महरुम अकेलेपन व अजनबीपन का जीवन व्यतीत करती है ,''मैं मात्र उस प्यार की दीवारों को ओढ़ लेने को, पहना लेने को यहाँ आई हूँ। एक अजीब क्रूर व्यवहार उसने मेरे प्रति बना लिया था..... और कितने ही दिन उस पत्थर–सी अनुभूति में मैं जीती रहती थी; भावना विहीन मात्र एक प्रस्तर प्रतिमा की तरह।''9 सुरेखा की घुटन उन तमाम नैतिक मानदण्डों से उपजी है जिसमें सांवलापन, सौतेली माँ की भर्त्सना जैसे तमाम तत्व उसके अस्तित्व को नकार देते हैं। इस नकार से उसके जीवन में खालीपन आ गया । चाचा–चाची की टोका–टाकी, माँ की भर्त्सना में वह सोचती है–''जैसे वह रास्ता भूलकर समय के जंगल में भटक रही थी। एक करुणा की या शायद किसी अवसर की प्रतीक्षा में जो न वह माँग रही थी।''10 कुसुम अंसल की कहानियों में नारी–जीवन के आंतरिक दुःख और भीतरी संघर्ष विविध रूपों में सामने आये हैं। 'आज के दिन' कहानी की रीना पति द्वारा किए उपेक्षित व्यवहार से अकेलेपन के गर्त में चली जाती हैं। ''स्पीड ब्रेकर'' की जयंती अपनी सास के रूढ़िग्रस्त विचारों से त्रस्त है। 'एक मात्र और' कहानी की संगीता बांझपन के कारण तथा 'आते समय' की पूजा विदेश में पति की व्यस्तता के कारण अकेलेपन तथा संत्रास का जीवन जीने को मजबूर हैं। 'कुछ अनकहा' ही बुआ वैधव्य–जीवन की विसंगतियों को जीने के लिए मजबूर हैं।

प्रभा खेतान के अनुभव का दायरा व्यापक है क्योंकि उन्होंने भारत तथा पश्चिम में अधिक समय व्यतीत किया तथा अध्ययन भी किया। इसीलिए उनके कथा–साहित्य के पात्र तथा विचार विभिन्न रूपों में सामने आए हैं। पहला सवाल, औरत क्या है? का जवाब वे ''आओ पेपे घर चलें'' में आइलिन से दिलाती हैं, ''भाई डियर! औरत कहाँ नहीं रोती और कब नहीं रोती। वह जितना ही रोती है, उतनी ही औरत होती जाती है।''11 यहाँ रोने का निहितार्थ सिर्फ आँखों से बहे आँसू से नहीं, बल्कि हृदय में निहित वेदना से है, जो समाज द्वारा नारी को दोयम दर्जा देने के कारण उत्पन्न हुई है और ये दंश सिर्फ भारतीय समाज का ही नहीं ,बल्कि सम्पूर्ण विश्व का खासतौर पर अमेरिका जैसे विकसित देश का है। 'छिन्नमस्ता' में प्रभा खेतान नारी–अस्तित्व के प्रश्न अधिक व्यापक स्तर पर उठाती हैं। वे परम्परा में चली आयी नारी के प्रति सोच को बताते हुए लिखती हैं। प्रिया कहती है,''स्त्री होना अम्मा की नजर में पाप है, एक हीन स्थिति है, गुलामों का जत्था है जो बिन मालिक के जी नहीं पाएगा।''11'छिन्नमस्ता' में प्रभा खेतान ने 'नारी–अस्तित्व' के प्रश्न को उठाया है। प्रिया के माध्यम से उन्होंने नारी–जीवन में अपनी पहचान बनाने की जद्जोहद का बड़ा जीवंत चित्रण किया है। अस्तित्व की लड़ाई में प्रिया पति, परिवार यहाँ तक बच्चे से संघर्ष करते हुए अपने जीवन का एक मार्ग देने कि कोशिश करती हैं। प्रिया का संघर्ष सिर्फ प्रिया का नहीं, बल्कि पूरी नारी जाति का हैं। नारी को भारतीय समाज में हेय दृष्टि से ही देखा नहीं गया, बल्कि उसके अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं किया गया। प्रिया और उसकी सास इसका उदाहरण हैं।

'इदन्नमम' में मैत्रेयी पुष्पा मंदा के चरित्र के माध्यम से 'नारी अस्तित्व' के संघर्ष को व्यापक बनाती हैं। मंदा तमाम यातनाओं, कष्टों को सहते हुए भी अपने अस्तित्व की लड़ाई जारी रखती हैं। 'चाक' की सारंग ग्रामीण जीवन के परिवेश में ही अपने अस्तित्व को आकार देती हे। नारी संघ बनाने से लेकर ग्राम प्रधान बनने तक की उसकी संघर्ष–यात्रा ग्रामीण–जीवन में नारी–चेतना का पर्याय है।मन्नू भण्डारी ने नारी–जीवन की ज्वलंत समस्याओं के साथ साहित्य को रूबरू कराया। मन्नू भण्डारी के उपन्यास ''आपका बंटी'' में शकुन के माध्यम से एक स्त्री का माँ, पत्नी से इतर अपनी जिन्दगी को जीने की नयी अनुभूति और चाह का ऐसा चित्रण किया है, जो अस्सी के दशक की महिलाओं की प्रबल आकाँक्षा है। आकाँक्षा यद्यपि आज भी यही है, किंतु आज कदम इससे कहीं आगे बढ़ गये हैं। शकुन का चित्रण सिर्फ स्वतंत्रता की चाह से जुड़ा हीं नहीं, बल्कि शकुन उन सभी स्थितियों, विडम्बनाओं और अंतर्द्वन्द्व से गुजर रही है जो माँ और पत्नी के अलावा अपनी चाह और स्वतंत्रता से जुड़ा है। इन सबसे उत्पन्न द्वन्द्व और टुकड़ों की जिंदगी ने कुंठा का सघन आवरण बना दिया और एक सवाल खड़ा हो गया कि स्त्री का अपना जीवन क्या है?

समाज में एक तरफ उन्मुक्त जीवन और स्वछंदता को अपनाते नारी पात्र है ।दूसरी तरफ वे नारी पात्र हैं जो तमाम पारिवारिक जिम्मेदारियों और कर्त्तव्यों को निभाती हुई, गृहस्थ जीवन जीती हुयीं भी स्वच्छंद हैं जैसा कि माधुरी छेड़ा कहती हैं,–''नारी जीवन में आज भी घर–परिवार, रिश्तेदारी–नातेदारी, रीति–रिवाज और भावनात्मक प्रक्रिया केन्द्र में है। आज भी एक कामकाजी महिला से गृहिणी होने की अपेक्षा रखी ही जाती है।''12 नारी की स्वछंदता को लेकर समाज ने नाना प्रकार की नैतिकता और आदर्श स्थापित किए, किन्तु आज की नारी इस सच को जान गयी है कि उसके अस्तित्व का निर्माण, उसकी इच्छा, आकाँक्षा और स्वप्न के बिना सम्भव नहीं

है। महिला कथाकारों के नारी पात्र इस वैचारिकी को सशक्त रूप से सामने रख रहे हैं।

'नींव के पत्थर' की वन्दना विवाह, परिवार, मातृत्व को दरकिनार कर स्वछंद रूप से जीवन जीना चाहती हैं, वहीं 'उसकी पंचवटी' की साधवी संयुक्त परिवार की जगह स्वतंत्र रूप से जीना ज्यादा पसन्द करती है। स्वच्छंदता का नया रूप 'उस तक' की मुक्ता में दिखायी पड़ता है, जहाँ वह घर परिवार को त्याग कर अकेले घर बसाती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिए नौकरी के साथ–साथ नाटक भी खेलती हैं। 'अपनी–अपनी यात्रा' की मधु भी जीवन में किसी बंधन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह कहती हैं–''मैं अधूरे जागरण में विश्वास नहीं करती। जीना है, तो भरपूर जियो की एक बार जिंदगी से शिकायत न रहे, कि जिया नहीं, जिन्दगी ने तुम्हें कुछ दिया नहीं।''13

'इदन्नमम' की 'बऊ' नंदा की माँ की स्वेच्छाचारिता का संकेत करती है, और अपशब्दों के द्वारा वे समाज की उस रुढ़ विचारधारा को भी सामने रखती हैं, जिसमें नारी को स्वछंदता का अधिकार नहीं है। ''हम ऐन दुःख समझते थे उसका, पर जीजा के संग ऐल–फेल की आजादी तो दे नहीं सकते थे। अपनी बाखर में रगीलियाँ तो नहीं रचाने देते जवानी जोर मार रही थी रंडी की तो मोड़ी के सामने ही बहनोई के संगे।''14'चाक' उपन्यास की सारंग परम्पराओं को तोड़कर, आधुनिक विचारधारा को अपनाती हैं। ''सारंग पुरानी रीतियों, कुरीतियों, रुढ़ियों से लड़ती तो शायद इतना टकराव न होता, उसका रास्ता दूसरा है, जो बेहद टेढ़ा और शूलों से भरा है क्योंकि वह पति से लड़ना चाहती है।''15 वह पति के अत्याचार से अलग अपना एक रास्ता बनाना चाहती है जहाँ उसे स्वतंत्रता मिले, जीवन जीने का रास्ता मिले। इस चाह में वह पति के अत्याचारों के खिलाफ खड़ी होती है।'छिन्नमस्ता' की प्रिया तमाम पारिवारिक शोषण को सहते हुए भी, अपने विचारों को मूर्त करने का प्रयास करती हैं। वह जैसा सोचती है, उसे अपने जीवन में उतारती भी हैं। वह सिर्फ पति के अत्याचारों को सहती नहीं, बल्कि इन अत्याचारों से लड़ती अपने लिए अलग मार्ग भी बनाती है, जहाँ वह स्वतंत्र है। अपने अनुसार जीवन जी सकती हैं।

जीवन में परिवर्तन के साथ नारी की सोच और विचारधारा में भी परिवर्तन आया। जैसा कि नारी के प्रति समाज और साहित्यकार के परम्परागत रवैये पर चोट करते हुए अमृता जी ने अत्यन्त निर्भीक, निडर एवं मौलिक टिप्पणी देते हुए कहा है–''हमारे शास्त्रों में भी औरत को जंजाल और सभी विपत्तियों की जड़ माना गया है, पुरूष की पाशविक प्रवृत्ति को नहीं जिसके कारण सीता हरी गयी या द्रोपदी निर्वसना और अपमानित की गयी, पर चूँकि सेक्स और औरत दुनियाँ के सबसे बड़े आकर्षण हैं। उसके चटकारेपन में लोग न डूबे, ऐसा मुमकिन नहीं होता।समय के साथ प्रेम और यौन–सम्बन्धों को लेकर नयी सोच और दृष्टि सामने आयी जैसा कि डॉ0 देवेन्द्र लिखते हैं–''आधुनिक समाज में नारी पुरूष सम्बन्धों का एक स्तर हुआ है जहाँ संयोग के शारीरिक सुख की तृप्ति के लिए सामाजिक बंधनों को चुनौती दी जाती है।''16नारी पुरूष संबन्धों के ये नये आयाम जिनमें विवाहपूर्ण प्रेम सम्बन्ध व विवाहोपरांत प्रेम सम्बन्ध, स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध, अवैध यौन सम्बन्ध आदि के विभिन्न रूप कुसुम अंसल के कथा–साहित्य में मिलते है। 'आज के दिन' कहानी में रीना व शेखर के विवाहपूर्ण सम्बन्ध, 'अधबनी सड़क' में वसुधा और गिरीश के विवाहपूर्ण सम्बन्ध इसके उदाहरण हैं।विवाहोपरांत प्रेम और यौन सम्बन्ध 'एक नयी मीरा' कहानी की रत्ना; 'इंतजार' की देविशा व मनुज; 'पत्ते बदलते हैं' की अनुराधा और मनोज के सम्बन्धों में प्रकट होते हैं। यौन सम्बन्धों को लेकर नैतिकता की चादर इन पात्रों के माध्यम से खण्डित होती नजर आती है, जब रत्ना कहती है, ''मैं जो जिस दिन सुहागिन थी उसी दिन जोगन बन गयी थी, उसी समय ही विरहिणी नहीं बनीं, तो अब क्या था?''17

'नींव के पत्थर' उपन्यास की वन्दना अनुराग से गर्भवती बनने पर मातृत्व स्वीकारना नहीं चाहती, वह विवाहपूर्ण शारीरिक सम्बन्ध तो बनाये रखना चाहती है किन्तु मातृत्व को नहीं। वह डॉक्टर से कहती है–''मैं यह बच्चा नहीं चाहती, इतनी जल्दी शादी नहीं चाहती।''18'उस तक' की मुक्ता अक्षय के साथ रहना स्वीकार करती है किन्तु विवाह स्वीकार नहीं करती। प्रेम को विवाह के साथ जोड़कर देखने की उसकी इच्छा नहीं है। विवाह के प्रति इस नये दृष्टिकोण और सोच को मुक्ता सामने रखती हैं।'चाक' की सारंग पति को दरकिनार कर श्रीधर से सम्बन्ध बनाती हैं। 'इदन्नम' की कुसुमा अपने अपने छोटे ससुर से सम्बन्ध रखती है। 'अल्मा कबूतरी' की कदमाबाई मंसाराम से सम्बन्ध बनाती हैं। इन सब सम्बन्धों ने विवाह संस्कार पर प्रश्नचिहन् लगा दिया है। जिस सम्बन्ध में प्रेम और विश्वास नहीं है, वे टूट तो रहे हैं, साथ ही नये–नये दृष्टिकोण (प्रेम और यौन सम्बन्धों को) लेकर आ रहे हैं जिसमें नित्य –निरंतर परम्पराएँ टूट रही हैं।

आज की महिला कथाकारों की कृतियों में स्त्री के 'स्वतंत्र व्यक्तित्व' को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। नर–नारी की समानता को स्वीकारती ये महिला कथाकार नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का नयी रूपरेखा प्रदान करती हैं। पुरुष की भाँति स्त्री को समाज में अपनी स्वतंत्र स्थिति प्रदान करने का प्रयास उनके पात्र करते हैं। डॉ0 एम. वेकेंटेश्वर लिखते हैं– ''कि नारी और पुरूष अपनी–अपनी जगह पूर्णत्व की खोज में प्रयत्नशील हैं किन्तु खोज की हर दिशा उनके व्यक्तित्वों को खण्डित कर रही हैं। परम्परागत वर्जनाओं से आज की नारी जैसे–जैसे मुक्त हो रही है, उसके सम्मुख नई–नई समस्याएँ उभर कर आ रही हैं।''19नारी ने अपने जीवन की इन तमाम समस्याओं से दूर भागने की कोशिश नहीं की, बल्कि अपनी संघर्षशीलता को आधार देकर इनसे रूबरू हुई है, जो इन कथाकारों की कृतियों में दिखायी पड़ती हैं।

कुसुम असंल की 'नींव का पत्थर' की शिखा का जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण रहा है। अपने जीवन के संघर्षों के साथ–साथ एक महती लक्ष्य 'गरीबों की सेवा' के लिए भी वह प्रयत्नशील रही है। शिखा गाँव के दुखी–दरिद्र लोगों को राहत देने के लिए अस्पताल बनाने का प्रयास करती

हैं। शिखा के संघर्षों पर लेखिका लिखती हैं–''इतने ही फूल बिखेरेगी उसके आँगन में कि जितने भी दुःख आयें, झोली भर कर जायें।''20'उसकी पंचवटी' की साधवी का संघर्ष एक माँ का संघर्ष है जो बच्चों के भविष्य के लिए निरन्तर संघर्षशील है,''वैसे ही मुझे भी तो अपने बच्चे की चिन्ता है, उसे कुछ कमी न रह जाये, उसे कोई अभाव न रह जाए, इसी से ऐसा किया।''21'उस तक' की मुक्ता ने नारी संघर्ष के भिन्न रूप को प्रस्तुत किया। परिवार छोड़ने तथा आत्मनिर्भर बनने की प्रक्रिया में उसने तमाम परेशानियों का सामना किया। 'अपनी–अपनी यात्रा' की सुरेखा तथा 'रेखाकृति' की नैना, जौहरबाई, मानविका सभी का जीवन नारी–जीवन के उन तमाम दिक्कतों से भरा पड़ा है जिसमें संघर्ष करते रहना ही उनके पास एक मात्र विकल्प है।

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानी 'मर्द' नारी का समाज में क्या स्थान है, को बयाँ करती है। दोयम दर्जे का दर्द तो है ही, साथ ही नारी पर तमाम लांछन लगाने के लिये समाज सदैव तत्पर रहता है। सबसे बड़ी बात है कि खुद नारी ही नारी की विरोधी है। सुशीला के कुम्भ में बिछड़ने के पश्चात् जब वह किसी अजनबी की सहायता से घर पहुँचती है, तो ताई उस पर तमाम तरह के लाछँन लगाती हैं, ''अरे छलछंदी लुगाइयों के यही ढंग होते हैं। पन्द्रह दिन बाहर मौज मारकर अब घर की सुध आई। डूब के न मर गयी? .....यहाँ अपना काला मुँह दिखाई चली आई, बेहया कहीं की।''22'झूलानट' की शीलो तथा 'चाक' की सारंग को अपने जीवन में तमाम दिक्कतों और परेशानियों को सहना पड़ता है। सारंग को पति के खिलाफ जाकर परिवार तथा समाज दोनों ही जगह कदम–कदम पर संघर्ष करना पड़ता है।'एक इंच मुस्कान' की रंजना कामकाजी महिला तथा परिवारिक दायित्व के बीच फँसी महिला के दर्द को बयाँ करती है ''आपके भीतर वही पुराना सांमतवादी पति जिंदा है– आप चाहते हैं कि पत्नी नौकरी करे साथ ही साथ घर की देखभाल करे, नौकर से सिर मारे, कपड़े संभाले..... तथा पाँव दबाये, फिर भी पति की यही शिकायत कि न वह पति को देखती है न घर को।''23'छिन्नमस्ता' की प्रिया को अपने बचपन तथा वैवाहिक जीवन में तमाम उपेक्षायें और परेशानियाँ सहनी पड़ती हैं। वह सोचती है–''क्या सारी जिन्दगी मैं बस टेबिल सजाती रहूँगी? ..... एक ही अनुभव का बार–बार घटना, घटते चले जाना, सब कुछ कितना नीरस लगने लगता है।..... गृहस्थी के झमेले कभी शांत न होने वाली लहरें..... क्या इसी को संसार–सागर कहा जाता है।''24ष्णा अग्निहोत्री की 'बात एक औरत की' कनु को अपनी सास के द्वारा तमाम प्रताड़ना को सहना पड़ता है। उसकी सास सदैव उसकी बुराई करती रहती थी। ''कनु काम करती है पर धीरे। घूँघट निकालती हैं पर ढ़ग से नहीं। सेवा करती है, पर मन से नहीं। रहती है, पर बेजान।''25 चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानी 'हिरनी' मुस्लिम समाज में नारी के पारिवारिक शोषण का दास्ता बयाँ करती है। फुफ्फी तथा जौहर द्वारा प्रताड़ित खुदेजा इस शोषण का शिकार है। वह कहती है कि''तेरा भाई आया था फुफ्फी ने जाने के सिखा दिया। आते ही उसने लाठी पकड़ ली..... कहते–कहते उसका स्वर ठण्डा हो गया।''26

पितृसत्तामक समाज के दंश को सदियों से नारी सहती आयी है। पुरूष की सत्ता के चलते भारतीय नारी को तमाम अमानुषी अत्याचार सहने पड़ते हैं। कहने को औरतों पर हो रहे इस अत्याचार पर तमाम विरोध हुए, किन्तु न तो इनमें कमी आयी और न ये अत्याचार बंद हुए। तसलीमा नसरीन का कथन सही लगता है–''घर में रह रही स्त्री भी निरंतर बलात्कृत हो रही है और घर के बाहर रास्ते, या कार्यक्षेत्र, या महानिर्देशक के दफ्तर में भी वह बलात्कृत होती है। स्त्री की सुरक्षा कहाँ है? कहाँ जाकर खड़ा होने पर स्त्री के बलात्कृत होने की आशंका नहीं है। कहाँ है इस दुनिया में वह स्थान?''26नारी को परिवार, समाज, नौकरी हर जगह शोषण का शिकार होना पड़ता है। नारी जीवन की इस त्रासदी को इन कथा–लेखिकाओं ने पूरी शिद्दत के साथ स्थान दिया।

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'बात एक औरत की' की नायिका कनु नारी–शोषण के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करती है। पिता के घर में माँ द्वारा उपेक्षा, बचपन में चाचा, काका तथा मास्टर जी द्वारा उसका दैहिक शोषण करने का प्रयास, पति द्वारा यौन–शोषण तथा ससुराल में उपेक्षा और अपमान ने स्त्री–जीवन के उन अनछूए पहलू को उजागर किया जिसमें नारी होना ही सबसे बड़ी गलती है। ''यह हार किसी एक औरत की नहीं, सदियों से चली आ रही भावनाओं में डूबी नारी की हार है।'' इस उपन्यास में लेखिका ने यौन–शोषण के द्वारा उन गोपनीय पक्षों को उजागर किया , जो नारी को नारी नहीं, बल्कि एक खिलौने के रूप में देखने वाले समाज के सच्चे पहलू हैं। पति द्वारा ट्रेन के फर्स्ट क्लास कूपें में ही उसका सब कुछ लूट लिया। वह सवाल करती हैं,''संजय जैसे ही पति होते हैं क्या? बहशी! जानवर! सुख–दुःख और अपनेपन के दो शब्द तक नहीं पूछते। परिचय–अपरिचय के बीच कोई सेतु नहीं.....वासना की कमजोर रस्सी।''कुमारिकाएं' उपन्यास की शुचिता को यौन–शोषण का शिकार होना पड़ता है। स्वामी जी उसे पान में बेहोशी की दवा पिलाकर उसका बलात्कार करते हैं। 'नीलोफर' की नीलोफर को शहजादे के द्वारा यौन–शोषण का शिकार होना पड़ता है। ''अब उसने निशाना लगाया। लड़की छटपटाने लगी। शहजादा और खूखांर हुआ। उसने लड़की के जिस्म का हर हिस्सा नीला कर दिया। बिलाकिस ने उसके हर घाव को सेंका और अंत में कहा था, गुलाम की कोई माँ नहीं, कोई बाप नहीं।''

नारी स्वतंत्रता की बात जब से शुरू हुई, आर्थिक आत्मनिर्भरता को महत्वपूर्ण हथियार के रूप में माना गया। आर्थिक आत्मनिर्भरता ने नारी को उत्पादक ही नहीं बनाया, बल्कि अपनी स्वतंत्रता, अपने अस्तित्व–निर्माण में उसे सहायक बनाया है। लेखिकाओं ने नारी पात्रों की आर्थिक आत्मनिर्भरता को दिखाकर उन्हें जीवंत, सशक्त तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है।

कुसुम अंसल के 'रेखाकृति' उपन्यास की मालविका आत्मनिर्भर बनने के लिए प्राध्यापिका की नौकरी

करती है, खुद की जिम्मेदारी उठाती है। माँ का भी पिता की मृत्यु के पश्चात् चले जाने पर वह तमाम प्रयासों से खुद को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाती है। परित्यक्ता नैना बेटे की मृत्यु के बाद नृत्य कला सिखाती हैं और बेटी की परवरिश करती हैं। भूपेन की पत्नी सविता नर्स की नौकरी कर अपना जीवन चलाती है।

बीसवीं सदी में आधुनिक विचारधाराओं ने भारतीय समाज में अपना प्रभाव फैलाना शुरू किया। आधुनिक शिक्षा, दर्शन तथा वैचारिकी के प्रभाव से जीवन के तमाम क्षेत्रों में तर्कसंगत विश्लेषण शुरू हुआ। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में इसका प्रभाव पड़ा। इन सब से तमाम बातों को स्वीकारा गया और तमाम चीजों को नकारा गया। वैवाहिक जीवन की बात करें तो समय के साथ नारी लेखिकाओं ने इस पर अपने विचार रखे। इनमें से एक था 'विवाह बंधन की अस्वीकारता'।नारी के अस्तित्व निर्माण, आत्मनिर्भरता के साथ ही वह स्वछंदता की ओर बढ़ी और इसके साथ ही उसने वैवाहिक जीवन के बंधन को अस्वीकार कर दिया। महिला–लेखिकाओं ने इस प्रश्नचिह्न को अपने साहित्य में व्यापक रूप से स्थान दिया।

कुसुम अंसल की नारी पात्र सुरेखा, मुक्ता, शिखा, वंदना ,मालविका आदि ने विवाह की अनिवार्यता को अस्वीकार कर दिया। विवाह तथा वैवाहिक जीवन की अनिवार्यता पर उनका विश्वास ही नहीं है। इस अस्वीकारता के भिन्न–भिन्न कारण भी लेखिका सामने रखती हैं। शिखा धनलोलुप व्यक्ति से विवाह तय किये जाने के कारण विवाह करना अस्वीकार करती हैं। वंदना बिना विवाह, प्रेम संबंध को महत्व देती हैं।मुक्ता कच्ची उम्र में अनिल की वासना का शिकार होती है, आगे सतपाल बाबू भी उसका दैहिक शोषण करते हैं, इन सब के कारण उसके मन में पुरुष वर्ग के प्रति घृणा का निर्माण होता है। अतः यह घृणा सागर व सुखेन्दु के विवाह–प्रस्ताव को अस्वीकार करने के रूप में सामने आती हैं। आगे वह अक्षय के साथ भी पत्नी नहीं, बल्कि पत्नी जैसी दोस्त बनना स्वीकारती हैं।'अपनी–अपनी यात्रा' की सुरेखा अविवाहित रहने का फैसला करती है। तमाम वैवाहिक जोड़ों को देखकर, खासतौर पर माँ–बाप, शिव–मंजरी तथा मिन्ना–उदेश की गृहस्थी को देखकर उसके मन में विवाह के प्रति खेद उत्पन्न होता है, ''यहाँ, विवाह के बंधन को सुरेखा भी नहीं स्वीकारेगी, कभी नहीं जितने अपमान से आप गुजर रहे हैं, उनके घाव जितनी क्षति कर गए, उसे ही भरते–भरते वह यहाँ तक आ गयी हैं। अब यह नया घाव अपने ऊपर नहीं ओढ़ेगी।''27

कुसुम अंसल की कहानी 'अँधीयात्रा' की सीमा भी विवाह–विरोधी विचारधारा की पक्षधर है वह विवाह के बंधन की जगह पर स्वछंद रहना ज्यादा अच्छा समझती है। ''स्वतंत्रता मेरे जीवन की पहली शर्त है और शादी जीने का एक अपंग प्रोत्साहन, एक अपनी ही अजीब निरर्थकता सी लगती है।''28

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'कुमारिकाएँ' की वंदना विवाह बंधन में विश्वास नहीं करती, वह परिवार की जिम्मेदारी को निभाती है। विक्रांत के साथ उसके संबंधों पर जब लोग लांछन लगाने लगते हैं, तो घर छोड़कर वर्किंग गर्ल्स हॉस्टल चली जाती है। वह लोगों के लांछन पर कहती हैं,–''कुवांरापन ऐसी स्थिति है कि कुवांरों को अच्छा कहलाने के लिए केवल घर ही में रहना आवश्यक हैं? भला घूमना–फिरना, मस्त रहना क्या बुरा काम है, जो किसी के भी भलेपन को खण्डित करता है।''29

विवाह के प्रति एक नया दृष्टिकोण इन लेखिकाओं के पात्रों के द्वारा सामने आया है, वह है बिना विवाह के जीवन। अर्थात् विवाह बंधन की अस्वीकार्यता के साथ–साथ बिना विवाह मातृत्व को अपनाना। तमाम पात्रों के द्वारा इस वैचारिकता का चित्रण किया गया। समाज में नये बदलाव और नैतिक मानदण्डों के टूटने की यह अभिव्यक्ति है।

'टपरे वाले' की पचिया का रामचंदानी द्वारा शोषण किये जाने से वह गर्भवती हो जाती है। रामचंदानी उसे पचास रूपये देकर सफाई करवाने के लिए कहता है। किंतु छठा महीने होने के कारण वह ऐसा नहीं कर पाती और बच्चे को जन्म देती है, बाद में उसकी माँ बच्चे का गला दबाकर कचरे में फेंक आती है, किंतु बच्चा मरता नहीं और पुलिस आकर पचिया को पकड़ती है।कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास 'टपरेवाले' में लीला के द्वारा लेखिका कुँवारी माँ' की समस्या को उठाती हैं। ''कुँवारे लड़की और पेट से.....। लीला की देह पूरे टपरों में उग आयी उन आँखों की हँसी को स्पष्ट अनुभव कर रही थी।''30 लीला को लोगों के ताने और भयावह बोलियों की आवाजें दिमाग में रौंदने लगती है।

नारी जीवन में तमाम उपेक्षाओं ने नारी को आत्मसम्मान के लिये जागृत किया। वह अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष ही नहीं करती, बल्कि आत्मविश्वास को भी पैदा करती हैं।

चाक की 'रेशम' तथा 'अल्मा कबूतरी' की कदमबाई नारी साहस और निर्भीकता के एक नये रूप को प्रस्तुत करती हैं। पति की मृत्यु के बाद मंसाराम के साथ सम्बन्ध रखते हुए कदमबाई राणा के रूप में उसके अंश को जन्म देती हैं। ''मगर नंगे ठुँठ सी कदमबाई ने गजब कर डाला। हथेलियों के बीच तक नाजुक पंखुड़ी दबाह बवंडर में खड़ी है, उन्हें इल्म नहीं था। गर्भ में बच्चा सधा रहा। न गिराया, न गिरने दिया।''31 तमाम दिक्कतों के बाद भी वह अपने आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करती है।मन्नू भण्डारी के 'आपका बंटी' की शकुन अन्याय और अत्याचार को मूक दर्शिका बनकर रहना नहीं चाहती है। वह अपने प्रति आत्मसम्मान के चलते टूटना पसंद करती है, झुकना नहीं। डॉ0 निर्मला जैन लिखती हैं, ''कहानी बंटी की है ।उपन्यास की स्थितियों का चुनाव कहीं न कहीं बंटी को द्वन्द्व में रखकर किया गया है। लेकिन उपन्यास की रचनाकार तलाक–शुदा पति–पत्नी की संतान की समस्या का सामना करती है। उपन्यास की बुनावट में स्थितियों से ज्यादा शकुन की वे मनः स्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं, जो इन स्थितियों को जोड़ती बनाती चलती है''32

इस प्रकार तमाम नारी पात्र अपने अस्तित्व, अपनी स्वछंदता, अपने व्यक्तित्व निर्माण के लिए संघर्ष करती हैं। लेखिकाओं ने अपनी नारीवादी सोच और दृष्टि से अपने पात्रों में रंग भरा है। नारी चेतना के तमाम मुद्दों

को उन्होंने उठाया ही नहीं, बल्कि एक नारीवादी दृष्टि भी सामने रखी हैं। यह नारीवादी दृष्टि एक दिन में निर्मित नहीं हुई, बल्कि बचपन से इस निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। जिस प्रकार उनके जीवन के तमाम अनुभव उनकी सृजन क्षमता को विस्तृत करते हैं। उनके पात्रों में विविधता तथा व्यापकता लाते हैं। उसी प्रकार स्त्री जीवन के तमाम पक्ष उनकी वैचारिकता को प्रौढ़ बनाते हैं।प्रिया, सोमा, मंदा, शीलो, कनु, खुदेजा, मुक्ता, शगुन आदि तमाम स्त्री पात्र वास्तव में वे तमाम अनुभव तथा आसपास के वास्तविक चरित्र हैं जो लेखिकाओं के जीवन से कभी न कभी जुड़े रहे हैं, इसीलिए ये तमाम पात्र समाज में तमाम जगह उपस्थित हैं। इन पात्रों की तमाम विषम परिस्थितियाँ वास्तविक जीवन में तमाम स्त्री के जीवन में रोज–रोज घटित होती है। अतः यहाँ इन पात्रों की विषम परिस्थितियाँ कोई नयी नहीं लगती है। ये स्त्री जीवन के ही तल्ख़ यथार्थ हैं। फर्क यह है कि इन स्त्री पात्रों में 'स्त्रीचेतना' विद्यमान है जो परिस्थितियों को यथास्थिति स्वीकारने की जगह संघर्ष तथा परिवर्तन करने के लिये उत्प्रेरित करती है। यही कथा साहित्य में निहित स्त्री दृष्टि है।

निष्कर्ष – हिन्दी लेखिकाओं के कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री जीवन के यर्थाथ को प्रस्तुत करती हैं सुरेखा, मुक्ता, शुचिता ,जंयती आदि सिर्फ शोषण और पित्रसत्तात्मक समाज के जीवन विसगतियो को ही नही नही जीती, बल्कि समाज ,नारी जाति को इसके खिलाफ एक रास्ता भी देती है ताकि नारी के प्रति समाज का द्वष्टिकोण बदल सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृ0–29*
2. *अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, अर्चना वर्मा, पृ0–13*
3. *मुझे माफ करना, दिनेश नंदिनी डालमिया, भूमिका*
4. *हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यास, डॉ0 एम0 वेक्टेश्वर, पृ0–36*
5. *समकालीन स्त्री विषयक दृष्टि के समाजशास्त्रीय आयाम, डॉ0 सरोज सिंह, (स्त्रीविमर्श) पृ0–191*
6. *दशवें दशक के स्त्री उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की खोज , डॉ0 राजेश कुमार गर्ग, ('स्त्रीविमर्श'), पृ0–101*
7. *राष्ट्रीय परिदृश्य में स्त्री– लेखन का प्रतिपक्ष , डॉ0 नीरू रस्तोगी, (''स्त्री विमर्श''), पृ0–156*
8. *साहित्य में स्त्री स्वानुभूति और सहानुभूति : कहानियों के संदर्भ में, डॉ0 रतन कुमारी गर्ग, (''स्त्रीविमर्श''), पृ0–113*
9. *पुरूष समाज के परिदृश्य में महिला कथाकारों का हस्तक्षेप, अमित सिंह और डॉ0 अलका प्रकाश, (''स्त्रीविमर्श''), पृ0–294*
10. *उसकी पचवंटी, कुसुम असंल, पृ0–12*
11. *अपनी–अपनी यात्रा, कुसुम असंल, पृ0–35*
12. *आओ पेपे घर चले, प्रभा खेतान, पृ0–55*
13. *छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ0–44*
14. *स्त्री जीवन दर्शन, डॉ0 माधुरी छेड़ा, पृ0–101*
15. *अपनी–अपनी यात्रा, कुसुम असंल, पृ0–39*
16. *इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0–31*
17. *चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0–183*
18. *कहानी की संवदेनशीलता : सिद्वांत एवं प्रयोग, डॉ0 देवेन्द्र पृ0–201*
19. *स्पीड ब्रेकर, कुसुम असंल, पृ0–31*
20. *नींव का पत्थर, कुसुम असंल, पृ0–110*
21. *हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार, डॉ0 एम0 वेक्टेश्वर, पृ0–37*
22. *उसकी पंचवटी, कुसुम असंल, पृ0–74*
23. *नींव का पत्थर, कुसुम असंल, पृ0–83*
24. *हिरनी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, (शब्दयोग), पृ0–17*
25. *एक इंच मुस्कान, मन्नू भण्डारी, पृ0–100*
26. *छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ0–114*
27. *बात एक औरत की, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0–59*
28. *हिरनी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, (शब्दयोग), पृ0–22*
29. *नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, डॉ0 गीता सोलंकी, पृ0–148*
30. *अपनी–अपनी यात्रा, कुसुम असंल, पृ0–126*
31. *इक्तीस कहानियाँ, कुसुम असंल, पृ0–131*
32. *कुमरिकाएँ, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0–94*
33. *टपरे वाले, कृष्णा अग्निहोत्री, पृ0–153*
34. *अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0–50*
35. *आधुनिक हिन्दी उपन्यास, निर्मलाजैन, पृ0–289*